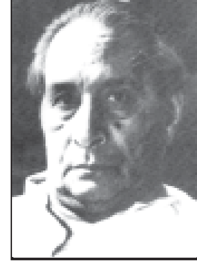
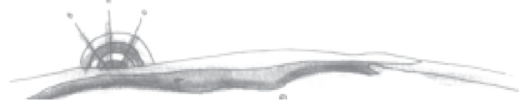


हरिशंकर परसाई

हरिशंकर परसाई का जन्म सन् 1922 में मध्य प्रदेश के होशंगाबाद ज़िले के जमानी गाँव में हुआ। नागपुर विश्वविद्यालय से एम०ए० करने के बाद कुछ दिनों तक अध्यापन किया। सन् 1947 से स्वतंत्र लेखन करने लगे। जबलपुर से ***वसुधा*** *नामक पत्रिका निकाली, जिसकी हिंदी संसार में काफ़ी सराहना हुई। सन् 1995 में उनका निधन हो गया।*

हिंदी के व्यंग्य लेखकों में उनका नाम अग्रणी है। परसाई जी की कृतियों में ***हँसते हैं रोते हैं, जैसे उनके दिन फिरे (कहानी संग्रह), रानी नागफनी की कहानी, तट की खोज (उपन्यास), तब की बात और थी, भूत के पाँव पीछे, बेईमानी की परत, पगडंडियों का ज़माना, सदाचार का तावीज़, शिकायत मुझे भी है, और अंत में, (निबंध संग्रह), वैष्णव की फिसलन, तिरछी रेखाएँ, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, विकलांग श्रद्धा का दौर (व्यंग्य संग्रह)*** *उल्लेखनीय हैं।*

भारतीय जीवन के पाखंड, भ्रष्टाचार, अंतर्विरोध, बेईमानी आदि पर लिखे उनके व्यंग्य लेखों ने शोषण के विरुद्ध साहित्य की भूमिका का निर्वाह किया। उनका व्यंग्य लेखन परिवर्तन की चेतना पैदा करता है। कोरे हास्य से अलग यह व्यंग्य आदर्श के पक्ष में अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक पाखंड पर लिखे उनके व्यंग्यों ने व्यंग्य-साहित्य के मानकों का निर्माण किया। परसाई जी बोलचाल की



सामान्य भाषा का प्रयोग करते हैं किंतु संरचना के अनूठेपन के कारण उनकी भाषा की मारक क्षमता बहुत बढ़ जाती है।

प्रेमचंद के फटे जूते *शीर्षक निबंध में परसाई जी ने प्रेमचंद के व्यक्तित्व की सादगी के साथ एक रचनाकार की अंतर्भेदी सामाजिक दृष्टि का विवेचन करते हुए आज की दिखावे की प्रवृत्ति एवं अवसरवादिता पर व्यंग्य किया है।*

प्रेमचंद के फटे जूते



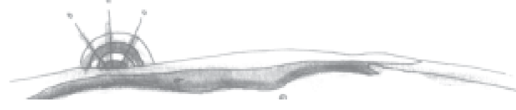
प्रेमचंद का एक चित्र मेरे सामने है, पत्नी के साथ फोटो खिंचा रहे हैं। सिर पर किसी मोटे कपड़े की टोपी, कुरता और धोती पहने हैं। कनपटी चिपकी है, गालों की हड्डियाँ उभर आई हैं, पर घनी मूँछें चेहरे को भरा-भरा बतलाती हैं।

पाँवों में केनवस के जूते हैं, जिनके बंद बेतरतीब बँधे हैं। लापरवाही से उपयोग करने पर बंद के सिरों पर की लोहे की पतरी निकल जाती है और छेदों में बंद डालने में परेशानी होती है। तब बंद कैसे भी कस लिए जाते हैं।

दाहिने पाँव का जूता ठीक है, मगर बाएँ जूते में बड़ा छेद हो गया है जिसमें से अँगुली बाहर निकल आई है।

मेरी दृष्टि इस जूते पर अटक गई है। सोचता हूँ—फोटो खिंचाने की अगर यह पोशाक है, तो पहनने की कैसी होगी? नहीं, इस आदमी की अलग-अलग पोशाकें नहीं होंगी—इसमें पोशाकें बदलने का गुण नहीं है। यह जैसा है, वैसा ही फोटो में खिंच जाता है।

मैं चेहरे की तरफ़ देखता हूँ। क्या तुम्हें मालूम है, मेरे साहित्यिक पुरखे कि तुम्हारा जूता फट गया है और अँगुली बाहर दिख रही है? क्या तुम्हें इसका ज़रा भी अहसास नहीं है? ज़रा लज्जा, संकोच या झेंप नहीं है? क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि धोती को थोड़ा नीचे खींच लेने से अँगुली ढक सकती है? मगर फिर भी तुम्हारे चेहरे पर बड़ी बेपरवाही, बड़ा विश्वास है! फोटोग्राफर ने जब 'रेडी-प्लीज़' कहा होगा, तब परंपरा के अनुसार तुमने मुसकान लाने की कोशिश की होगी, दर्द के गहरे कुएँ के तल में कहीं पड़ी मुसकान को धीरे-धीरे खींचकर ऊपर निकाल रहे होंगे कि बीच में ही 'क्लिक' करके फोटोग्राफर ने 'थैंक यू' कह दिया होगा। विचित्र है यह अधूरी मुसकान। यह मुसकान नहीं, इसमें उपहास है, व्यंग्य है!



यह कैसा आदमी है, जो खुद तो फटे जूते पहने फोटो खिंचा रहा है, पर किसी पर हँस भी रहा है!

फोटो ही खिंचाना था, तो ठीक जूते पहन लेते, या न खिंचाते। फोटो न खिंचाने से क्या बिगड़ता था। शायद पत्नी का आग्रह रहा हो और तुम, 'अच्छा, चल भई' कहकर बैठ गए होगे। मगर यह कितनी बड़ी 'ट्रेजडी' है कि आदमी के पास फोटो खिंचाने को भी जूता न हो। मैं तुम्हारी यह फोटो देखते-देखते, तुम्हारे क्लेश को अपने भीतर महसूस करके जैसे रो पड़ना चाहता हूँ, मगर तुम्हारी आँखों का यह तीखा दर्द भरा व्यंग्य मुझे एकदम रोक देता है।

तुम फोटो का महत्व नहीं समझते। समझते होते, तो किसी से फोटो खिंचाने के लिए जूते माँग लेते। लोग तो माँगे के कोट से वर-दिखाई करते हैं। और माँगे की मोटर से बारात निकालते हैं। फोटो खिंचाने के लिए तो बीवी तक माँग ली जाती है, तुमसे जूते ही माँगते नहीं बने! तुम फोटो का महत्व नहीं जानते। लोग तो इत्र चुपड़कर फोटो खिंचाते हैं जिससे फोटो में खुशबू आ जाए! गंदे-से-गंदे आदमी की फोटो भी खुशबू देती है!

टोपी आठ आने में मिल जाती है और जूते उस ज़माने में भी पाँच रुपये से कम में क्या मिलते होंगे। जूता हमेशा टोपी से कीमती रहा है। अब तो जूते की कीमत और बढ़ गई है और एक जूते पर पचीसों टोपियाँ न्योछावर होती हैं। तुम भी जूते और टोपी के आनुपातिक मूल्य के मारे हुए थे। यह विडंबना मुझे इतनी तीव्रता से पहले कभी नहीं चुभी, जितनी आज चुभ रही है, जब मैं तुम्हारा फटा जूता देख रहा हूँ। तुम महान कथाकार, उपन्यास-सम्राट, युग-प्रवर्तक, जाने क्या-क्या कहलाते थे, मगर फोटो में भी तुम्हारा जूता फटा हुआ है!

मेरा जूता भी कोई अच्छा नहीं है। यों ऊपर से अच्छा दिखता है। अँगुली बाहर नहीं निकलती, पर अँगूठे के नीचे तला फट गया है। अँगूठा ज़मीन से घिसता है और पैनी मिट्टी पर कभी रगड़ खाकर लहूलुहान भी हो जाता है। पूरा तला गिर जाएगा, पूरा पंजा छिल जाएगा, मगर अँगुली बाहर नहीं दिखेगी। तुम्हारी अँगुली दिखती है, पर पाँव सुरक्षित है। मेरी अँगुली ढँकी है, पर पंजा नीचे घिस रहा है। तुम पर्दे का महत्व ही नहीं जानते, हम पर्दे पर कुर्बान हो रहे हैं!



तुम फटा जूता बड़े ठाठ से पहने हो! मैं ऐसे नहीं पहन सकता। फोटो तो ज़िंदगी भर इस तरह नहीं खिंचाऊँ, चाहे कोई जीवनी बिना फोटो के ही छाप दे।

तुम्हारी यह व्यंग्य-मुसकान मेरे हौसले पस्त कर देती है। क्या मतलब है इसका? कौन सी मुसकान है यह?

–क्या होरी का गोदान हो गया?

–क्या पूस की रात में नीलगाय हलकू का खेत चर गई?

–क्या सुजान भगत का लड़का मर गया; क्योंकि डॉक्टर क्लब छोड़कर नहीं आ सकते?

नहीं, मुझे लगता है माधो औरत के कफ़न के चंदे की शराब पी गया। वही मुसकान मालूम होती है।

मैं तुम्हारा जूता फिर देखता हूँ। कैसे फट गया यह, मेरी जनता के लेखक?

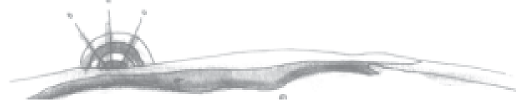
क्या बहुत चक्कर काटते रहे?

क्या बनिये के तगादे से बचने के लिए मील-दो मील का चक्कर लगाकर घर लौटते रहे?

चक्कर लगाने से जूता फटता नहीं है, घिस जाता है। कुंभनदास का जूता भी फतेहपुर सीकरी जाने-आने में घिस गया था। उसे बड़ा पछतावा हुआ। उसने कहा–

'आवत जात पन्हैया घिस गई, बिसर गयो हरि नाम।'





और ऐसे बुलाकर देने वालों के लिए कहा था–'जिनके देखे दुख उपजत है, तिनको करबो परै सलाम!'

चलने से जूता घिसता है, फटता नहीं। तुम्हारा जूता कैसे फट गया?

मुझे लगता है, तुम किसी सख्त चीज़ को ठोकर मारते रहे हो। कोई चीज़ जो परत-पर-परत सदियों से जम गई है, उसे शायद तुमने ठोकर मार-मारकर अपना जूता फाड़ लिया। कोई टीला जो रास्ते पर खड़ा हो गया था, उस पर तुमने अपना जूता आज़माया।

तुम उसे बचाकर, उसके बगल से भी तो निकल सकते थे। टीलों से समझौता भी तो हो जाता है। सभी नदियाँ पहाड़ थोड़े ही फोड़ती हैं, कोई रास्ता बदलकर, घूमकर भी तो चली जाती है।

तुम समझौता कर नहीं सके। क्या तुम्हारी भी वही कमज़ोरी थी, जो होरी को ले डूबी, वही 'नेम-धरम' वाली कमज़ोरी? 'नेम-धरम' उसकी भी ज़ंजीर थी। मगर तुम जिस तरह मुसकरा रहे हो, उससे लगता है कि शायद 'नेम-धरम' तुम्हारा बंधन नहीं था, तुम्हारी मुक्ति थी!

तुम्हारी यह पाँव की अँगुली मुझे संकेत करती-सी लगती है, जिसे तुम घृणित समझते हो, उसकी तरफ़ हाथ की नहीं, पाँव की अँगुली से इशारा करते हो?

तुम क्या उसकी तरफ़ इशारा कर रहे हो, जिसे ठोकर मारते-मारते तुमने जूता फाड़ लिया?

मैं समझता हूँ। तुम्हारी अँगुली का इशारा भी समझता हूँ और यह व्यंग्य-मुसकान भी समझता हूँ।

तुम मुझ पर या हम सभी पर हँस रहे हो, उन पर जो अँगुली छिपाए और तलुआ घिसाए चल रहे हैं, उन पर जो टीले को बरकाकर बाजू से निकल रहे हैं। तुम कह रहे हो–मैंने तो ठोकर मार-मारकर जूता फाड़ लिया, अँगुली बाहर निकल आई, पर पाँव बच रहा और मैं चलता रहा, मगर तुम अँगुली को ढाँकने की चिंता में तलुवे का नाश कर रहे हो। तुम चलोगे कैसे?

मैं समझता हूँ। मैं तुम्हारे फटे जूते की बात समझता हूँ, अँगुली का इशारा समझता हूँ, तुम्हारी व्यंग्य-मुसकान समझता हूँ!